डॉ भीमराव आंबेडकर के सामाजिक न्याय पर विचारः समकालीन परिप्रेक्ष्य में

राखी कुशवाह, शोधार्थिनी
समाजशास्त्र और राजनीति विज्ञान विभाग
समाज विज्ञान संकाय
दयालबाग शिक्षण संस्थान, आगरा – 282005 उत्तर प्रदेश

सार

सामाजिक न्याय भारतीय संविधान की आत्मा और दृष्टि है। सामाजिक व्यवस्था को सुरक्षित व व्यवस्थित बनाये रखने के लिये राज्य का कर्तव्य है कि देश की वैधानिक विधि का समान अवसरों के आधार पर आवंटित हो। साथ ही राज्य का यह उत्तरदायित्व है कि समाज का कोई भी नागरिकः सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक इत्यादि न्याय से वंचित नहीं रहें। न्यायपूर्ण समाज के निर्माण के लिए भरतीय संविधान की महत्वपूर्ण भूमिका रही है जिसे भारतीय संविधान की आत्मा अर्थात् प्रस्तावना में विशेष महत्व दिया गया है। भारत अपनी आरक्षण नीति के माध्यम से सामाजिक न्याय को अभ्यास में लाने के प्रयास कर रहा हैं। वास्तविक रूप से भारत में प्राचीन काल से ही जाति पर आधारित हिंदू सामाजिक व्यवस्था ने एक सामाजिक व्यवस्था की घोषणा की, जो भारतीय समाज में अन्याय का मुख्य कारण रही थी। जिसने अस्पृश्यता भेदभाव जैसी प्रथा को जन्म दिया। समाज के कुछ समूह जिन्हें भारत में दलित नामक नाम से जानते हैं, जिन्हें प्राकृतिक संसाधनों, आजीविका इत्यादि अधिकारों की पहुंच से वंचित कर दिया गया था। इस सामाजिक असमानता के भेदभाव को समाप्त करने के लिए और न्यायपूर्ण देश के निर्माण के लिये अम्बेडकर ने स्वतंत्रता आंदोलन की अवधि के दौरान सामाजिक न्याय की अवधारणा को संबोधित किया। विशेष रूप से इस शोध पत्र में सामाजिक न्याय पर आंबेडकर जी के विशिष्ट कार्यों (सामाजिक न्याय में योगदान) अर्थात् विचारों का वर्णन किया जायेगा। साथ ही यह शोध भारतीय समाज में सामाजिक न्याय की वर्तमान प्रासंगिकता के अन्वेषणों को दर्शायेगी।

शब्द कुंजीः भारतीय समाज, दलित, अनुच्छेद, भारतीय संविधान, सामाजिक न्याय, समानता, स्वतन्त्रता, बन्धुत्व, जाति व्यवस्था, वर्तमान परिवर्तन।

प्रस्तावना

डॉ॰ आंबेडकर ने हिन्दुओं में अस्पृश्य मानी जाने वाली जातियों को संगठित करके उन्हें सामाजिक तथा राजनीतिक न्याय हेतु संघर्ष करने के लिए प्रेरित किया। स्वयं अस्पृश्य (महार) जाति में जन्म लेकर उन्होंने निरंतर संघर्ष तथा आत्मविश्वास के बल पर उच्च शिक्षा ग्रहण की। जातिवाद तथा छुआछूत के कारण बाल्यकाल से ही उन्हें अपमान तथा उत्पीड़न का सामना करना पड़ा, जिसका प्रभाव बाद में उनके विचारों पर पड़ना स्वाभाविक था। कोलम्बिया विश्वविद्यालय में उच्च–शिक्षा ग्रहण करते हुए उन्होंने समानता के व्यवहार का अनुभव किया, जो भारत में उनके लिए वर्जित था। अब्राहम लिंकन तथा वाशिंगटन के विचारों का भी उन पर गहरा प्रभाव पड़ा। वह कबीर की भक्ति फूले जी के समाज सुधार तथा साहू महाराज के ब्राह्मणवाद के विरुद्ध संघर्ष से भी प्रभावित थे। अम्बेडकर विचारधारा पर लोकतंत्र, समानता, स्वतंत्राता एक भ्रातृत्व के पाश्चात्य विचारों का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। अपने अमेरिकी प्रवास के दौरान वह रंगभेद की नीति का विरोध करने वाले चौदहवें संशोधन से अत्यधिक प्रभावित हुए थे। इससे उन्हें भारत में दलितों का उद्धार करते हेतु संघर्ष करने की प्रेरणा मिली। उनका मत था कि दलितों को स्वतंत्रा जीवनयापन व सक्षम बनाने हेतु संवैधनिक उपचार ही सुरक्षा की दृष्टि से सहायक होंगे। उनके द्वारा लिखी गई अनेक कृतियों में 'जाति–प्रथा' का उन्मूलन (Annihilation of Caste), 'शूद्र कौन थे' (Who were the Shudras?) तथा 'अस्पृश्य जातियाँ' (The Untouchable) सामाजिक न्याय की दिशा में उनका महत्त्वपूर्ण योगदान माना जाता है।

प्राचीन भारतीय दृष्टिकोण में, न्याय कर्तव्यों पर आधारित था अर्थात् अधिकारों की अवधारणा पर आधारित नहीं था। प्राचीन भारतीय परंपरा में, दो उपागम 'दंडनीति' और 'धर्म' थे, जिनका संबंध न्याय से था। दंडनीति 'आधुनिक न्याय' (कानून और दण्ड) की धारणाओं के बहुत करीब थी। इसने न्याय के वैधानिक पहलू का विचार दिया। धर्म, कर्तव्यों और न्याय के लिए एक और नाम था, धर्म के साथ पुण्य आचरण के अलावा कुछ नहीं था। इस प्रकार, प्लेटो के न्याय के समान, हिंदू परंपरा ने न्याय को धर्म द्वारा निर्धारित कर्तव्यों से जोड़ा।[1]

न्याय के लिए आधुनिक दृष्टिकोण समान तौर पर 'उदारवादी' और 'मार्क्सवादी' दृष्टिकोण की संकल्पना पर निर्धारित हैं। उदारवादी तर्क यह है, कि न्यायपूर्ण अधिकार और स्वतंत्रता एक समाज के लिए आवश्यक हैं, जबकि मार्क्सवादी दृ ष्टिकोण न्यायपूर्ण समाज के लिए समानता पर निर्भर करता है। वर्तमान परिस्थितियों के स्त्रोतों के आधार पर जब तक और समाज में मौजूदा असमानताओं को दूर नहीं किया जाएगा, तब तक समाज स्थापित नहीं होगा। क्योंकि न्याय का मूल आधार स्वतंत्रता, समानता और अधिकार हैं।[2]

समाजिक न्याय की अवधारणा

शाब्दिक रूप में जस्टिस (Justice) लैटिन भाषा के जस (Jus) शब्द से बना है। जिसका अर्थ है "बंधना" या बाँधना। इस प्रकार न्याय से तात्पर्य उस सामाजिक व्यवस्था से है जिसमें परस्पर संबंधों से बंधे रहते हैं।[3] साधरण अर्थ में न्याय उस अवस्था का नाम है, जिसमें उचित व्यवस्था हो, व्यक्तिगत और सामाजिक संबंधों में सामंजस्य हो, निष्पक्षता, स्वार्थहीनता और तर्कसंगतता हो। जिसमें व्यक्ति अपने–अपने अधिकारों व कर्तव्यों का पालन करते हों।

प्लेटो ने अपनी पुस्तक "The Republic" में न्याय को परिभाषित करते हुए लिखा है कि, "न्याय मानव आत्मा की उचित अवस्था और मानवीय स्वभाव की प्राकृतिक माँग है।"[4] वहीं बार्कर का विचार है कि "न्याय का अर्थ है प्रत्येक व्यक्ति द्वारा उस कर्तव्य का पालन, जो उसके प्राकृतिक गुणों और सामाजिक स्थिति के अनुकूल है। नागरिक की अपने धर्म की चेतना तथा सार्वजनिक जीवन में उसकी अभिव्यंजना ही राज्य का न्याय है।"[5]

सामाजिक न्याय से तात्पर्य सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक दिशाओं में न्याय के विषय से है। सामाजिक न्याय का सम्बन्ध व्यक्ति के अधिकारों और सामाजिक नियंत्रण के बीच संतुलन स्थापित करने से है जिससे कानूनों के अधिन व्यक्ति की वैध आशाओं को पूरा करने हेतु सुनिश्चित किया जा सके तथा उसे उनके अधीन लोगों के विषय में आश्वस्त किया जा सके, और राष्ट्र की एकता व समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप उसके अधिकारों का उल्लंघन किये जाने की स्थिति में प्रतिरक्षा प्रदान की जा सके।[6] सामाजिक न्याय के विचार का उद्देश्य न केवल व्यक्ति और समाज के हितों में उपयुक्त समाधान करना है या इनमें विरोध की परिस्थिति में समाज के हित को अधिमान्यता प्रदान करना है, बल्कि यह सामाजिक परिवर्तन के महान परास का एक आवश्यक अंग है।[7]

सामाजिक न्याय का सिद्धांत यह माँग करता है कि सामाजिक जीवन में सभी मनुष्यों की गरिमा को स्वीकार किया जाए। लिंग, वर्ण, जाति, धर्म व स्थान के आधार पर भेदभाव न किया जाए तथा प्रत्येक व्यक्ति को आत्मविकास के सभी अवसर सुलभ कराए जाएँ। सामाजिक न्याय किसी भी आधार पर किए गए शोषण को स्वीकार नहीं करता। वस्तुतः सामाजिक न्याय एक विस्तृत अवधरणा है, जिसमें आर्थिक तथा राजनीतिक न्याय भी सम्मिलित है। भारतीय संविधन के अनुच्छेद 38 में कहा गया है, सामाजिक न्याय "एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था है जिसमें सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक न्याय राष्ट्रीय जीवन की सभी संस्थाओं को अनुप्रमाणित करती है।"[8]

सामाजिक न्याय सामाजिक मानदंडों, क्रम, कानून और नैतिकता के विकास की एक प्रक्रिया से निकली है। इसने सामाजिक कार्रवाई के सिद्धांतों के आधार पर नियमों और विनियमों को लागू करके समाज में हस्तक्षेप के लिए सिर्फ कार्रवाई

करने और स्थान बनाने पर बल दिया। "सामाजिक न्याय" शब्द के दो शब्द हैं: एक सामाजिक है और दूसरा न्याय है। सामाजिक न्याय 'शब्द का संबंध उन सभी मनुष्यों से है जो समाज में रहते हैं, जबकि 'न्याय' शब्द स्वतंत्रता, समानता और अधिकारों से संबंधित है। इस प्रकार, सामाजिक न्याय स्वतंत्रता को सुनिश्चित करने, समानता प्रदान करने और समाज में प्रत्येक मनुष्य के लिए व्यक्तिगत अधिकारों को बनाए रखने से संबंधित है। दूसरे शब्दों में, समाज के सभी सदस्यों की क्षमताओं के उच्चतम विकास को सुरक्षा कायम करने को सामाजिक न्याय कहा जा सकता है।[9] डॉ भीमराव अम्बेडकर जी का समाजिक न्याय में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। अर्थात् उनके सामाजिक न्याय का विवरण करने से पूर्व उनके चरित्र का विवरण करना अतिआवश्यक है।

डॉ॰ अम्बेडकर एक महान विचारक, तेजस्वी वक्ता और लेखक, विशद विद्वता के परिचायक, अगाध ज्ञान के भण्डार, अद्‌भुत प्रतिभा, सराहनीय निष्ठा और न्यायशीलता तथा स्पष्टवादिता के धनी, भारत रत्न डॉ. भीमराव रामजी अम्बेडकर ने अपने आपको दलितों के प्रति ही नहीं बल्कि भारतीय जनता के प्रति समर्पित कर दिया था। उन्हें 'दलितों का मसीहा' और भारतीय संविधान के प्रमुख निर्माता के रूप में याद किया जाता हैं। **जवाहर लाल नेहरू के शब्दों में,** वे "हिन्दू समाज के अत्याचारपूर्ण तत्वों के प्रति विद्रोह के प्रतीक" थे।[10] उन्होंने हिन्दूओं में 'अछूत' या 'अस्पृश्य' मानी जाने वाली जातियों को संगठित किया; शासन के अंगों में उनके प्रतिनिधित्व के लिए संघर्ष किया और उनकी शिक्षा को बढ़ावा दिया। स्वयं 'अछूत' जाति में जन्म लेकर उन्होंने अनवरत संघर्ष और आत्मविश्वास के बल पर शिक्षा प्राप्त की थी। **सी. राजगोपालाचारी** उन्हें निहायती ईमानदार न्यायशास्त्री मानते थे। यही नहीं **प्रोफेसर पायली ने** उन्हें 'आधुनिक मनु' कहकर पुकारा।[11] इसके अतिरिक्त उन्हें किसी ने दलितों का मसीहा कहा, किसी ने '20 वीं सदी का स्मृतिकार' कहा, किसी ने 'भारत का बुकर टी वाशिंगटन' कहा, किसी ने 'भारत का डॉ. जॉनसन' कहा, इसके अलावा अब्राहम लिंकन, भारत का मार्टिन लूथर, भारत का पॉल रॉबसन, टॉमस जैफरसन इत्यादी नामक नामों से अम्बेडकर जी को पुकारा गया है।[12]

मुचकुंद दुबे (पुर्व विदेश सचिव) के अनुसार, "बाबा साहब आंबेडकर उन भारतीय नेताओं की श्रेणी में आते हैं जिन्होंने भारत की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष किया और राष्ट्र के स्वतंत्र्योत्तर युग में संक्रांति पुनर्रचना को भी सँभाला। हालांकि उनमें वे अकेले ही थे जिन्होने भारतीय समाज में व्याप्त हर तरह के अन्याय और भेदभाव को सक्रियता से तथा परिश्रम से दूर करने को अपने जीवन का मिशन बना लिया।"[13]

डॉ॰ भीमराव अम्बेडकर के सामाजिक न्याय पर विचार

डॉ॰ भीमराव अम्बेडकर का सामाजिक न्याय के क्षेत्र में विशेष योगदान रहा हैं। उन्होनें भारत में अछूतों के लिए एक आधुनिक शब्द, दलित, हमारे समाज के सभी सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक मोर्चों में वंचित लोग हैं, जो भारत के जातिगत सामाजिक स्तरीकरण द्वारा उनके दुख, भेदभाव, शोषण और उत्पीड़न का कारण बने। दलितों की इन दयनीय स्थितियों को ज्योतिबा फुले, डॉ. भीम राव अंबेडकर जैसे कुछ प्रख्यात सामाजिक और राजनीतिक दार्शनिकों ने संबोधित किया। भारतीय संविधान के प्रमुख वास्तुकार, उनके द्वारा निर्मित संवैधानिक पाठ सभी भारतीय नागरिकों के लिए नागरिक स्वतंत्रता की एक विस्तृत श्रृंखला के साथ संवैधानिक गारण्टी और सुरक्षा प्रदान करता है। भारत का संविधान दलितों को अनुसूचित जाति (SC) और अनुसूचित जनजाति को विशेष अधिकारों के रूप में वर्गीकृत करता है। वे ऐसे लोग हैं जो जमीन पर खेती करने, जूते धोने, कपड़े धोने, शौचालय साफ करने, मृत जानवरों या अज्ञात मानव शरीर को खुरचने और सभी प्रकार के मासिक धर्म के कामों में व्यस्त रहते हैं, लेकिन कलंक साझा करते हैं। अस्पृश्यता और अक्सर निम्न जातियों के सदस्यों के साथ खाने, धूम्रपान और यहां तक कि एक साथ बैठने इत्यादि से इंकार किया जाता है तथा उन्हें अक्सर कुओं और नलकूपों का उपयोग करने के लिए मजबूर किया जाता है। भारतीय संविधान में दलितों के इस भेदभाव को कम करने के लिए प्रावधान किए गए हैं।[14]

एक न्यायपूर्ण समाज वह समाज है जिसमें श्रद्धा का भाव और अवमानना का अवरोही भाव एक करुणामय समाज के निर्माण में विलीन हो जाता है।

डॉ. आंबेडकर सामाजिक क्रांतिकारी थे। वह हिन्दुओं, विशेषतः ब्राह्मणों के हाथों अपमानित होने वाले दलित वर्ग के उद्धारक थे। उन्होंने दलित समुदाय को तिरस्कार तथा अधीनता के उस दलदल में से उबारा जिसमें धर्मान्त तथा धर्म के ठेकेदार ब्राह्मणों ने उन्हें फँसा दिया था। तिलक की तरह उनका मत था कि प्रत्येक को अपने अधिकार के लिए संघर्ष करना पड़ता है। अधिकार दान में नहीं दिए जाते। इसी प्रकार प्रत्येक नागरिक को पूर्वस्थापित सामाजिक संरचना, रीति–रिवाजों, विश्वासों व व्यवहार के विरुद्ध लड़ना होगा। अपनी प्रसिद्ध कृति "शूद्र कौन थे ?" में उन्होंने मनु द्वारा निर्दिष्ट वर्ण–व्यवस्था को अस्वीकार कर दिया। उन्होंने वेदों में वर्णित चतुर्वर्ण–व्यवस्था का खण्डन किया, जिससे ब्राह्मणों की तुलना पुरुष के मुख से, क्षत्रियों की भुजाओं से, वैश्यों की जंघाओं से तथा शुद्रों की पगों में की गई है। यह सिद्धांत असमानता का द्योतक है। उनके अनुसार वर्ण–व्यवस्था पर आधरित हिन्दू समाज शोषण व असमानता को बढ़ावा देता है। अस्पृश्य वर्ग वर्ण–व्यवस्था की उत्पत्ति है। इस व्यवस्था में ब्राह्मणों को उच्च स्थान प्राप्त है तथा अस्पृश्यों को शोषण व दमन का सामना करना पड़ता

है। अतः अस्पृश्यता–निवारण व भारतीय समाज में सुधार का एक ही उपाय है कि वर्ण– व्यवस्था का अन्त कर दिया जाए। अम्बेडकर इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि हिन्दू समाज में समानता सम्भव नहीं है इसी कारण अन्ततः उन्होंने हिन्दू धर्म का परित्याग कर बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया था।[15]

सामाजिक न्याय की आंबेडकर की अवधारणा सभी मनुष्यों की स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के लिए है। वह एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था का समर्थन करते थे, जो अपने जीवन के सभी क्षेत्रों में मानव और मानव के बीच सही संबंधों पर आधारित हो। एक तर्कवादी और मानवतावादी के रूप में, उन्होंने धर्म के नाम पर मनुष्य ारा किसी भी प्रकार के पाखंड, अन्याय और शोषण को स्वीकार नहीं किया। वह एक ऐसे धर्म का समर्थन करते थे जो नैतिकता के सार्वभौमिक सिद्धांतों पर आधारित हो जो सभी समुदायों, सभी देशों और सभी जातियों के लिए लागू है। यह तर्क के अनुरूप होना चाहिए और स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के मूल सिद्धांतों पर आधारित होना चाहिए। वह जाति व्यवस्था को हिंदू धर्म की सबसे बड़ी बुराई मानते थे। उनके अनुसार वर्ण व्यवस्था सभी असमानताओं का मूल कारण है– अम्बेडकर जाति व्यवस्था और अस्पृश्यता के जनक भी है।

संवैधानिक प्रावधान

आंबेडकर एक ऐसे सामाजिक न्याय व्यवस्था के समर्थक थे जहां मनुष्य की स्थिति उसकी योग्यता और उपलब्धियों पर आधारित होती हो और जहां कोई भी व्यक्ति अपने जन्म के कारण महान या अछूत नहीं होता माना जाता हो। उन्होंने देश के सामाजिक रूप से शोषित और आर्थिक रूप से शोषित लोगों के लिए अधिमान्य उपचार की नीति की वकालत की। भारत के संविधान, जिसे अम्बेडकर जी की प्रारूप समिति की अध्यक्षता में निमार्ण किया गया था, में कई प्रावधान शामिल हैं जो राज्य के सभी नागरिकों के लिए न्याय, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक के साथ–साथ स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के लिए सुरक्षित करने में संलग्न हैं। भारतीय संविधान में कई प्रावधान ऐसे सम्मिलित किये गये है जो जनता को समाज में समानता का दर्जा उपलब्ध करवाते है। अंबेडकर ने संविधान के पारित होने के लिए संविधान सभा के समक्ष अपने भाषण में कहा कि "मैंने अपना काम पूर्ण कर लिया है, काश कल भी सूर्योदय हो। नए भारत को राजनीतिक स्वतंत्रता मिल गई है, लेकिन सामाजिक और आर्थिक स्वतंत्रता का सूरज उगाना बाकी है।"

संविधान का निमार्ण करते समय डॉ. भीमराव अम्बेडकर जी और संविधान निर्माताओं के द्वारा सामाजिक न्याय की भूमिका पर स्पष्ट बल दिया है। संविधान का निर्माण करते समय संविधान–निर्माताओं द्वारा इस तथ्य को भलि–भांति समझ लिया गया था कि सच्चे लोकतन्त्र के लिए स्वतन्त्रता और समानता कि ही नहीं, वरन् न्याय की भी आवश्यकता है क्योंकि

न्याय के बिना स्वतन्त्रता और समानता के आदर्श सिद्धांत बिल्कुल व्यर्थ हो जाते हैं। भारतीय संविधान की प्रस्तावना में सभी नागरिकों को राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक न्याय प्रदान करना संविधान का लक्ष्य घोषित किया गया है।[16] इन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये लोकतान्त्रि व गणतन्त्रीय व्यवस्था को अपनाया गया गया है और संविधान के अनुच्छेद 19 द्वारा नागरिकों को छः स्वतन्त्रताएं प्रदान कि गयी हैं।

भारतीय संविधान में सामाजिक न्याय के आदर्श को अनेक रूपों में स्वीकार किया गया है। संविधान के तृतीय भाग में मौलिक अधिकार और चतुर्थ भाग (राज्य की नीति के निदेशक तत्व) में सामाजिक न्याय की प्राप्ति के लिए विविध उपायों का उल्लेख किया गया है। अनुच्छेद 14 के अन्तर्गत, भारत के सभी नागरिको को कानून के सामने समानता और कानूनों से समान सुरक्षा प्रदान की गयी है। अनुच्छेद 15 में धर्म, मूल वंश, जाति, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर भेद–भाव नहीं किया जायेगा और अनुच्छेद 16 के द्वारा राज्य के अधिन पदों पर नियुक्ति के संबंध में सभी नागरिकों को अवसर की समानता प्राप्त है। अनुच्छेद 17 के द्वारा छुआछुत का तथा अनुच्छेद 23 व 24 द्वारा बेगार व शोषण का अन्त कर दिया गया है। संविधान के उपर्युक्त अनुच्छेदों द्वारा तो सामाजिक न्याय के मार्ग में आने वाली बाधाओं को दूर किया गया है और संविधान के नीति निदेशक तत्वों के अन्तर्गत विशेषतया अनुच्छेद 41 से 47 तक जो विविध व्यवस्था की गयी हैं, उनका लक्ष्य सकारात्मक रूप में सभी नागरिकों को सामाजिक न्याय प्रदान करना है। अनुच्छेद 41 में नागरिकों को कुछ अवस्थाओं में काम, शिक्षा और लोक सहायता पाने का अधिकार दिया गया है, अनुच्छेद 42 राज्य को जिम्मेदारी सौंपता है कि वह काम की उचित दशाएं बनाये रखने की कोशिस करेगा। अनुच्छेद 43 श्रमिकों के लिए निर्वाह योग्य मजदूरी का प्रबन्ध, अनुच्छेद 44 नागरिकों के लिए समान व्यवहार संहिता, अनुच्छेद 45 बालकों के लिये निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था, अनुच्छेद 46 अनुसूचित जातियों तथा अन्य सभी दुर्बल वर्गों के शिक्षा और अर्थ सम्बन्धी उन्नति और अनुच्छेद 47 में सामान्य जनता के जीवन स्तर को उठाने की मांग की गयी है।[17] किसी एक के धर्म, जाति, नस्ल या लिंग के आधार पर चुनावों में अपभ्रंश के खिलाफ प्रतिबंध है (अनुच्छेद 325)।[18] अनुच्छेद 330 और 333 प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र में उनकी जनसंख्या के आधार पर अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों (लोग या आदिवासी) के सदस्यों के लिए सीटें आरक्षित करने के लिए संघ और राज्य विधायिका को अनुमति देते हैं।[19] अनुच्छेद 338 अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए एक राष्ट्रीय आयोग बनाने का आदेश देता है ताकि उन्हें प्रदान किए गए सुरक्षा उपायों की निगरानी की जा सके। अंत में, अनुच्छेद 341 प्रत्येक अनुसूचित राज्य या अनुसूचित जाति के आन्तरिक उप समूहों की सूची के संबंध में अनुसूचित जातियों के विभिन्न उपश्रेणियों की सरकारी पहचान को संभव बनाता है। सार्वजनिक अधिसूचना के माध्यम से राष्ट्रपति द्वारा प्रकाशित अंतिम माना जाता है।[20]

संविधान में अनुसूचित जातियों और जनजातियों को जो विशेष सुविधाए प्रदान की गयी हैं, उन्हें किसी भी प्रकार से सामाजिक न्याय के प्रतिकुल नहीं कहा जा सकता है। वास्तव में इन दलित वर्गों की स्थिति बहुत अधिक गिरी हुई थी और जब तक इन्हें विशेष स्थिति प्रदान न कर दी जाय, तब तक उनके द्वारा समाज के अन्य व्यक्तियों के साथ समानता प्राप्त करने की आशा नहीं की जा सकती।

भारतीय संविधान ने सामाजिक और राजनीतिक दोनों क्षेत्रों में समानता और न्याय के आदर्शों को स्वीकार किया है। तदानुसार, इसने धर्म, जाति या जन्म स्थान के आधार पर किसी भी वर्ग के किसी भी भेदभाव को समाप्त कर दिया। इस आदर्श के अनुसरण में यह है कि संविधान ने धर्म के आधार पर विधानसभाओं या किसी भी सार्वजनिक कार्यालय में सीटों के सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व या आरक्षण को समाप्त कर दिया है। निर्देशक सिद्धांतों का अनुच्छेद 46 राज्य को लोगों के कमजोर वर्गों और विशेष रूप से अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के शैक्षिक और आर्थिक हितों को बढ़ावा देने में विशेष ध्यान रखने के लिए शामिल करता है और उन्हें सामाजिक अन्याय से बचाता है। राज्य द्वारा किए गए ऐसे किसी भी प्रावधान को भेदभाव की जमीन पर चुनौती नहीं दी जा सकती। अनुच्छेद 330 से 342 अनुसूचित जातियों और जनजातियों के सुरक्षित–संरक्षण हितों के लिए विशेष प्रावधान करता है। संविधान इस बात को परिभाषित नहीं करता है कि अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के अनुच्छेद 341 और 342 में कौन लोग हैं, हालांकि, राष्ट्रपति को इन जातियों और जनजातियों की सूची तैयार करने का अधिकार है।[21]

वर्तमान परिप्रेक्ष्य के सन्दर्भ में सामाजिक न्याय की संकल्पना

वर्तमान पहलुओं के आधार पर आज, दलित कुल भारतीय आबादी का 16.2% हिस्सा हैं। लेकिन देश के संसाधनों पर उनका नियंत्रण मात्र 5% से भी कम है। दलितों की आधी आबादी गरीबी रेखा के नीचे रहती है, और इससे भी अधिक (62 %) अशिक्षित हैं।[22] दलितों की घरेलू औसत आय 1998 में 17,465 रुपये थी, जो राष्ट्रीय औसत का सिर्फ 68% थी। दलित परिवारों के 10% से भी कम लोग सुरक्षित पेयजल, बिजली और शौचालय का खर्च उठा सकते हैं, जो कि उनकी सामाजिक स्थिति में गिरावट का संकेत है। इसके अलावा, दलित सबसे बुरे अपराधों और अत्याचारों के दैनिक शिकार हैं, जो समाज के अन्य वर्गों को भी सम्मान से दूर करते हैं। इन अपराधों का अधिकांश हिस्सा सर्वव्यापी भय के कारण अपरिवर्तित रहता है, और जिन लोगों की रिपोर्ट की जाती है, उन्हें अक्सर पुलिस द्वारा अनदेखा कर दिया जाता है या "Backlogged Court System" को समाप्त कर दिया जाता है। 1992 से 2000 के बीच, कुल 334,459 मामले पुलिस के

साथ राष्ट्रव्यापी रूप से संज्ञेय अपराध के रूप में दर्ज किए गए। स्वतंत्रता प्राप्त करने के 70 से अधिक वर्षों के बाद, भारत अभी भी जाति व्यवस्था के कैंसर से बहुत पीड़ित है। देश में दलित सबसे कमजोर, हाशिए पर और क्रूर समुदाय हैं।[23]

गुजरात में दलितों की स्थितिः वर्तमान परिप्रेक्षय में अगर पंजाब, हिमाचल प्रदेश या पश्चिम बंगाल जैसे राज्यों से तुलना की जाए, जहां दलितों की आबादी 20 प्रतिशत से अधिक है, तो गुजरात में दलितों का अनुपात काफी कम है। 2001 की जनगणना के अनुसार, गुजरात में अनुसूचित जाति के लगभग 3.6 मिलियन सदस्य हैं, जो राज्य की कुल जनसंख्या का 7.1% है। हालांकि, यह अपेक्षाकृत कम आंकड़ा उनकी दयनीय स्थिति के विपरीत संकेत देता है। गुजरात में 80 प्रतिशत से अधिक दलित दैनिक मजदूर हैं, जिनमें से अधिकांश कृषि क्षेत्र में हैं। अनुसूचित जाति की आधी आबादी भूमिहीन है या उसके पास एक एकड़ से कम भूमि है, जो जीवित रहने के लिए उन्हें प्रमुख जातियों की भूमि पर काम करने के लिए मजबूर करती है।[24]

इस निर्भरता और गुजरात में श्रम–कल्याण की अर्ध–अक्षमता के कारण, दलित अत्यधिक दबाव और भेदभाव के अधीन हैं। उनके खिलाफ किए गए अत्याचार एक दैनिक वास्तविकता है, जिसमें केवल 14 जिलों में 3 साल की अवधि में 4,000 से अधिक मामले दर्ज किए गए हैं। मैनुअल स्कैवेंजिंग अभी भी बहुत प्रचलित है, गुजरात के राज्य के संस्थान स्वयं दलितों को सूखे शौचालयों को साफ करने के लिए नियुक्त करते हैं। एक ऐसे राज्य के लिए जो खुद को भारत में एक आधुनिक और संपन्न क्षेत्र के रूप में चित्रित करना पसंद करता है, गुजरात अभी भी अपने सभी नागरिकों को सामाजिक न्याय सुनिश्चित करने से बहुत दूर है। वास्तव में, गुजरात के पास एक खराब मानवाधिकार रिकॉर्ड है और उसे अपने अल्पसंख्यकों पर ध्यान देना चाहिए।[25]

गुजरात सरकार द्वारा अनुसूचित जाति से संबंधित लोगों के उत्थान के लिए निर्मित की गई कुछ नीतियों को उच्च पदों पर लागू किया है। सबसे प्रमुख आरक्षण प्रणाली है, जहां सरकार में कुछ सीटें केवल दलितों के लिए निर्धारित हैं। गुजरात में, सरकार और शिक्षा क्षेत्रों में 7% सीटें दलितों के लिए आरक्षित हैं (राष्ट्रीय स्तर पर 14% की सीमा के विपरीत)। यह संसद के 26 सदस्यों में से 2 (सांसद) और 132 विधान सभाओं (एमएलए) के 13 सदस्यों में से वर्तमान में अनुसूचित जाति के सदस्यों के पास है। राज्य भर में जिला, ब्लॉक और गाँव स्तर पर जगह–जगह आरक्षण व्यवस्था स्थापित है।[26] आरक्षण के माध्यम से दलितों के उत्थान के लिए इस वादे के साथ भी, पूरे गुजरात में दलितों के साथ भेदभाव जारी है। दलितों पर अत्याचार के मामलों की संख्या और अस्पृश्यता की प्रथा राज्य भर में खतरनाक दरों पर जारी है, विशेषकर अन्य भारतीय राज्यों की तुलना में।

निष्कर्ष

डॉ॰ आंबेडकर के विचारों पर संयम रखते हुए, भारतीय संविधान सामाजिक न्याय और मानवीय गरिमा के आधार पर सभी नागरिकों को समान अधिकारों के प्रति आश्वस्त करता है। लेकिन वर्तमान परिस्थिति के आाधार पर अभी भी दलितों की स्थिति में प्रमुख सुधार नहीं है। हालांकि, संविधान के अन्तर्गत इस वर्ग के उत्थान के लिये कई प्रावधान किये गये है। जिससे कि दलितो के साथ भेदभाव न होकर समान व्यवहार हो। किन्तु अभी भी दलित वर्गों के साथ स्वर्ण लोगों द्वारा भेदभाव किया जाता है। आंबेडकर के द्वारा सामाजिक न्याय की जो संकलपना प्रस्तुत कि गयी थी वह अभी तक समाज में सम्पूर्ण रूप से स्वीकृत नहीं की गयी है। अर्थात् समाज में आंबेडकर जी के विचारों को वास्तविक रू॰ से अभ्यास में अपनाया नहीं है।

आंबेडकर भारतीय समाज के कमजोर समग्र वर्ग के साथ हो रहे शोषण के प्रति अधिक चिंतित थे। दलितों के साथ हो रहे भेदभाव का दृष्टिकोण करते हुए उन्होंने संविधान में प्रावधानों को लागू करके आधुनिक जातिगत भेदभाव को समाप्त करने का विकल्प चुना। इसलिए, सामाजिक न्याय के आंबेडकर के विचार कमजोर वर्गों के अधिकारों और उनके सम्मान को समाज में सरोकार करने हेतु संवैधानिक और कानूनी प्रावधानों को बढ़ावा दिया। भारतीय संविधान में मौजूदा अधिकारों से संबंधित प्रावधान भारतीय समाज में प्रासंगिक हैं। हालाँकि, केवल संवैधानिक प्रावधान भेदभाव की सदियों पुरानी प्रथा को समाप्त करने में पर्याप्त रूप से साबित नहीं हुए। स्वतन्त्रता के तत्पश्चात् से वर्तमान अवधि तक सामाजिक न्याय पूर्ण रूप से स्थापित होने में असमर्थ रहा है। क्योंकि भारत में जाति व्यवस्था, धर्म, अल्पसंख्यक इत्यादि के साथ भेदभाव व असमानता के कारण इनकी स्थिति समाज में आज भी दयनीय बनी हुई है। उदाहरण स्वरूप दलितों ने समाज में सम्मानपुर्वक रहने व हिंदू धर्म में जाति आधारित भेदभाव से मुक्ति प्राप्त करने के लिए बौद्ध धर्म में परिवर्तित होने का वैकल्पिक निर्णय अपनाया। इन सभी पहलुओं के आधार पर व निष्कर्षों के परिणाम स्वरूप, यह कहा जा सकता है कि इस तरह के सामाजिक कलंक को समाप्त करने के लिए सर्वप्रथम देश से जाति व्यवस्था व वर्ण व्यवस्था जैसी कुरूतियों को समाप्त किया जाना चाहिए तभी एक आदर्श सामाजिक न्याय को स्थापित किया जा सकता है। समाज में दलितों के साथ असमानता को समाप्त विविध सुझावो के माध्यम से समाप्त किया जा सकता है। आंबेडकर के न्याय की अवधारणा को सभ्य समाज के माध्यम से संस्थानों द्वारा प्रचारित किया जाना चाहिए। शिक्षा के माध्यम से पाठ्यक्रमों में 'जातिवाद को समाप्त करने' के उद्देश्य से विद्यार्थियों को शिक्षित किया जाना चाहिए। संस्था, संगठन, एनजीओ इत्यादी के माध्यम से लोगों को जातिवाद के प्रति जागरूक करना चाहिए। केन्द्र और राज्य सरकार द्वारा भी समय–समय पर सामाजिक सुधार के लिए महत्वपूर्ण प्रावधान करते रहना चाहिए।

संदर्भ सूचीः–

1. Raghavendra, R. H. (2016): "Dr. B.R. Ambedkar's Ideas on Social Justice in Indian Society" Contemporary Voice of Dalit: SAGE, pp. 24-29, available at https://www.researchgate.net/publication/301914070_Dr_BR_Ambedkars_Ideas_on_Social_Justice_in_Indian_Society accessed on October/20/2019
2. Ibid
3. Ghai, K. K. (?): "Speech on Justice: Meaning and Types of Justice", available at http://www.yourarticlelibrary.com/speech/speech-on-justice-meaning-and-types-of-justice/40361 accessed on October/22/2019)
4. Bhandari, S. (2014): "The Ancient and Modern Thinking about Justice: An Appraisal of the Positive Paradigm and the Influence of International Law", Ritsumeikan Annual Review of International Studies, vol. 13, pp. 1-41, available at http://www.ritsumei.ac.jp/acd/cg/ir/college/bulletin/e-vol.13/01_Bhandari.pdf accessed on October/23/2019
5. Barker, S. E. (1977): "Greek Political Theory: Plato and his Predecessors", London: Routledge, pp. 176-177
6. Singh, B. (1976): "The Supreme Court as an Instrument of Social Justice", New Delhi: Sterling Publishers, p. 73
7. Boulding, K. E. (1962): "Social Justice in Social Dynamics", Edited by: Richard P. Brandt et al. in Book "Social Justice", Englewood Cliffs, N.J. : Prentice-Hall, p. 92
8. Chandrachud, H. Y. V. (1991): "Fundamental Rights in Their Economic, Social and Cultural Context", Edited by: Commonwealth Secretariat in Book: "Developing Human Rights Jurisprudence: A Third Judicial Colloquium on the Domestic Application of International Human Rights Norms", Gambia: Commonwealth Secretariat, P. 134
9. Ibid, 1
10. Zelliot, E. (1986): "The Social and Political Thought of B. R. Ambedkar", Edited by Thomas Pantham and Kenneth L. Deutsch in Book: "Political Thought in Modern India", London: SAGE Publications, p. 161
11. yods"k] dq- ¼2012½% ßMkW- Hkhejko jketh vEcsMdjß] laiknd% vt; dqekj vkSj bLyke vyh] iqLrd% ßHkkjrh; jktuhfrd fparu% ladYiuk,a ,oa fopkjdß] fnYyh% ih;lZu] i`ñ 252
12. iqtkjh] oh- ds- ¼\½% "MkW vEcsMdj% thou n"kZu"] fnYyh% xkSre cqd lsUVj] i``B 138
13. tk/ko] ,u- ¼2015½% ßMkW- vkacsMdj% vkfFkZd fopkj ,oa n"kZuß] ubZ fnYyh% izHkkr izdk"ku] i`añ 11
14. Mokshagundam, P. K. (?): "Dr. Ambedkar's Concept of Social Justice and Indian Constitution Protection for Dalits – A Recent Day Analysis", available at https://papers.ssrn.com/sol3/papers.cfm?abstract_id=2827994 accessed on October/20/2019
15. Majumdar, A. K. and Singh, B. edited (1997): "Ambedkar and Social Justice", New Delhi: Radha Publications, Pp. 1-44
16. Pylee, M. V. (2006): "Constitutional Government in India", New Delhi: S. Chand & Company, Sixth Edition, p. 59

17. Thiruvengadam, A. K. (2017): "The Constitution of India: A Contextual Analysis", Portland: Bloomsbury, Pp. 101-137 (Laxmikant, M. (2017): "Indian Polity", Delhi: McGraw Hill Education (India) Private Limited available at https://www.sandipuniversity.edu.in/competitive/Downloads/Books/Important-Books-for-UPSC/Indian-Polity-5th-Edition-M-Laxmikanth.pdf accessed on October/23/2019
18. Pandey, J. N. (2005): "Constitutional Law of India", Allahabad: Published Central Law Agency, Forty Second Edition, Pp. 662-66
19. Ibid.
20. Ibid, 14
21. Ibid, 18
22. Pandey, S. M. (?): "World Development book case study: the dalit minority in India", available at https://www.scribd.com/document/104767049/World-Development-Book-Case-Study-docx-Sarvesh-Mani-Pandey accessed on October/22/2019
23. Haseena, V.A. (2015): "The History of Dalit Culture and Their Deplorable Situation in India", Historical Research Letter, Vol. No. 23, ISSN 2225-0964, Pp. 1-5, availavle athttps://www.iiste.org accessed on October/24/2019
24. Ibid, 14
25. Ibid
26. Status of Dalits in Gujrat- http://navsarjan.org/navsarjan/status-of-dalits-in-gujarat/ accessed on October/24/2019